भारतीय सामाजिक अन्याय तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध उपन्यास.सम्राट 'मुंशी प्रेमचन्द' जी का योगदान

डॉ0 (सूफ़ी) शकील अहमद
प्रवक्ता
इतिहास विभाग, मुमताज़ पी0जी0 कालेज, लखनऊ

मुंशी प्रेमचन्द जी केवल एक महान कहानीकार, नाटककार तथा उपन्यासकार ही नहीं बल्कि वह एक स्वतंत्रता सेनानी तथा भारत के एक महान एवं सच्चे सपूत भी थे। जहां एक ओर उन्होंने अपनी कृतियों द्वारा समाज में व्याप्त दोषों, अन्यायों एवं समस्याओं को उजागर कर उसके निराकरण के मार्ग का बोध कराया, वहीं दूसरी ओर उन्होंने भारत में विदेशी सरकार के विरुद्ध असहनीय नीतियों की तीव्र भर्त्सना की तथा उसके निदान अथवा मुक्ति के लिए तथा देश की स्वतन्त्रता के प्रति अपने लेखनकार्य से लेकर शारीरिक रूप से सर्वस्व बलिदान कर दिया। परन्तु खेद! देश की स्वतंत्रता के पूर्व ही वे इस संसार से सदैव के लिए विदा हो गये।

भारत में जहां बड़े–बड़े गद्यकारों और कहानीकारों, नाटक कारों तथा उपन्यास कारों के नाम लिये जाते हैं उनमें मुंशी प्रेमचन्द जी का नाम अग्रगण्य है। उनका नाम अत्यन्त आदर एवं सत्कार के साथ लिया जाता है। उन्होंने उर्दू तथा हिन्दी भाषाओं के माध्यम से अपने लेखन कार्य द्वारा देश की आज़ादी के लिए भ्रष्ट अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद तथा दूषित भारतीय सामाजिक दशा के विरुद्ध अपना लेखन–बिगुल बजाकर अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। केवल इतना ही अपितु उसके निदान हेतु अपना सर्वस्य न्योछावर कर दिया। ऐसी मिसाल जैसी कि मुंशी प्रेमचन्द जी ने व्यवहारिक रूप से करके दिखाई, बहुत कम मिलती है।

प्रेमचन्द जी ने अपने अध्ययन काल में उस समय की भारतीयों में व्याप्त मुफलिसी, ग़रीबी, अस्प्रश्यता तथा अन्याय का अत्यन्त निकट से अनुभव किया। लोगों के दुःख दर्द तथा अमानवीय कृत्यों का उसके मस्तिष्क पर ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपने लेखों, कहानियों, उपन्यासों तथा नाटकों आदि में केवल शहरियों का ही नहीं बल्कि ग्रामीण जीवन की व्यथा का ऐसा सजीव चित्रण पेश किया जो अपने में एक अनूठा स्थान रखता है। प्रेमचन्द जी ने अंग्रेज़ों द्वारा भारतीयों के प्रति उत्पन्न की गयी। कठिनाइयों, अन्यायों और शोषण के निवारण के लिए अंग्रेज़ों के विरुद्ध अपने लेखों के माध्यम से तथा आन्दोलनों में स्वयं सम्मिलित होकर अत्यन्त सक्रियता सहित अहम भूमिका निभाई। ये भारत को अंग्रेज़ों के चंगुल से छुड़ाकर, भारतीयों को एक स्वतन्त्र वातावरण में प्रवेश कराना चाहते थे। इस कार्य के लिए उन्होंने अपना संघर्ष अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक जारी रखा और वे अपने देश तथा देशवासियों के प्रति अमूल्य सेवा करते हुए सन् 1936 में इस संसार से सदैव के लिए विदा हो गये।

प्रेमचन्द जी की आयु का सन् 1880 से 1936 तक का अन्तराल भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस अन्तराल में उन्होंने भारतीयों के प्रति देश की स्वतंत्रता के लिए भारतीय संघर्षों में पर्याप्त शक्ति एवं गति प्रदान की थी। यह वह समय था कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की बागडोर शनैः शनैः उदारवादियों से निकल कर गांधी जी के पास आ गयी थी। गांधी

जी ने अंग्रेज़ी साम्राज्य के विरुद्ध आराम कुर्सी की राजनीति त्यागकर अदालत, सज़ा और विभिन्न कष्टों को सहकर जन–आन्दोलन करने की इच्छा व्यक्त की थी। इसलिए प्रेमचन्द जी ने उग्रवादी दल के नेताओं में शामिल रहना श्रेयस्कर ही समझा। अतः उनका अपना जीवन संघर्षमय बनता गया। वे अब गांधी जी के अपेक्षाकृत नेहरू जी के अधिक सन्निकट हो गये।

मुंशी प्रेमचन्द जी का जन्म 31 जुलाई, 1880 में बनारस से चार मील दूर लमाही नामक ग्राम में कायस्थ परिवार में हुआ था। उनके बाबा (दादा) गुरू सहाय राय एक साधारण पटवारी थे। पिता श्री मुंशी अजायब राय एक पोस्ट आफिस में लिपिक के पद पर कार्यरत थे। प्रेमचन्द की माता आनन्दी देवी एक सुन्दर तथा सुभावशील महिला थीं।

प्रेमचन्द जी का बचपन गांव में ही व्यतीत हुआ। वे खेल–कूद में काफ़ी रुचि रखते थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा–दीक्षा उनके घर पर ही हुईतथा उन्होंने गांव के ही एक मौलवी साहब के द्वारा उर्दू तथा फारसी की शिक्षा ग्रहण की।

'प्रेमचन्द' उपनाम (तख़ल्लुस) अपना लिया था। उनका वास्तविक नाम धनपति राय था। नौकरी में उन्होंने 'नवाब राय' उपनाम रख लिया था। बहुत से लोग उन्हें जीवन भर नवाब राय ही जानते रहे। परन्तु उन्होंने अपना अमर उपनाम ''प्रेमचन्द'' लिखने की दुनिया में हमेशा प्रयोग किया और ''प्रेमचन्द'' के नाम से ही प्रसिद्ध भी हुए।

प्रेमचन्द जब छः मास के ही थी कि उनकी माता का देहान्त हो गया था। पिता ने दूसरा विवाह कर लिया था। उन्होंने उनका लालन–पालन बड़ी ही मातृत्व भाव से किया था। जिसके कारण वे अपने कार्य में बड़ी तल्लीनता से लगे रहे और कामयाबी की मंज़िल तक पहुंचे। उनकी दूसरी मां ने कभी भी उनके काम–काज में किसी प्रकार का कोई व्यवधान नहीं उत्पन्न किया, बल्कि हर प्रकार से उनकी मददगार ही साबित हुई।

प्रेमचन्द ने 15 वर्ष की अवस्था में नवीं कक्षा में प्रवेश किया। बनारस में ''क्वीन्स कालेज'' में अपने अध्ययन कार्य को पूर्ण किया और साथ ही उनका विवाह भी 15 वर्ष की अवस्था में कर दिया गया। सन 1897ई0 में लम्बी बीमारी के पश्चात् उनके पिता का देहान्त हो गया। उसी वर्ष उन्होंने मैट्रिकुलेशन की परीक्षा द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण की। घर की स्थिति के ख़राब होने के कारण किसी न किसी प्रकार उनकी पढ़ाई–लिखाई चलती तो रही परन्तु पिता की मृत्यु के बाद हालात और भी गम्भीर हो गये। उन्होंने 'सेन्ट्रल हिन्दू कालेज' (आधुनिक बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी) में दाख़िला लिया। एक वकील के दो पुत्रों की ट्यूशन द्वारा मिले रूपयों से वे किसी प्रकार अपना काम–काज चलाते रहे। प्रेमचन्द जब गोरखपुर में अपने कार्यपद पर आसीन थे तब उन्होंने इलाहाबाद विश्व विद्यालय से बी.ए. द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण करके अपने इच्छित शैक्षिक स्तर को ऊंचा उठाया।

सन् 1900 में प्रेमचन्द को सरकारी ज़िला स्कूल बहराइच में एक सहायक अध्यापक के रूप में नियुक्त किया गया। यहां से उनकी जीवन–जीविका की शुरूआत हुई। यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि प्रेमचन्द जी का लम्बा जीवन अध्यापक के रूप में ही व्यतीत हुआ। इसके बाद उनका स्थानान्तरण कानपुर हो गया, जहां उनकी मुलाक़ात ''ज़माना'' (अख़बार)के सम्पादक मुन्शी दयाराम निगम जी से हुई। यही मुंशी जी प्रेमचन्द जी के जीवन के अन्तिम समय तक

मित्र रहे।

प्रेमचन्द ने शिक्षा विभाग में एक अध्यापक के रूप में अपने जीवन की शुरूआत की। सन् 1901 तक कानपुर में ठहरे। इसी समय राजनीतिक कार्यों के प्रति उनकी दिलचस्पी पैदा हुई। अब वे अपने राजनीतिक गतिविधियों को लेख–लेखन के माध्यम से प्रदर्शित कर सकने में पूर्ण रूप से सक्षम थे। उन्होंने ''ज़माना'' अख़बार में लेख लिखना शुरू कर दिया। वे राजनीतिक गुरू गोपाल कृष्ण गोखले के शिष्य बन गए। परन्तु ये बाल गंगाधर तिलक जी के दो टूक एवं गम्भीर विचारों की ओर तीव्रता से झुकते चले गए।

उस समय उनके मित्र दयानन्द निगम जो उदारवादी सिद्धान्तों के पोषक थे। परन्तु प्रेमचन्द उग्रवादी विचारों से सहमत थे। परन्तु इन दोनों में पारस्परिक मित्रवत मधुर सम्बन्ध में कोई अन्तर नहीं आया। केवल दोनों में सिद्धान्तों का ही अन्तर कहा जा सकता है।

श्री निगम जी ने प्रेमचन्द के विषय में लिखा **''प्रेमचन्द राजनीतिक तौर से उग्रवादी दल की ओर उन्मुख हुए। हम लोग अहमदाबाद कांग्रेस के अधिवेशन में शामिल होने के लिए गये। वहीं ठहरे भी परन्तु उन्होंने तिलक का ही साथ दिया जबकि मैंने गोखले तथा सर फ़िरोज़शाह का पक्ष लिया। उन्होंने थोड़ा भी मिन्टो–मार्ले सुधार अथवा मान्टेम्यु चेम्सफोर्ड योजनाओं के प्रति कोई विश्वास नहीं व्यक्त किया।''**

प्रेमचन्द जी का विचार था कि कोई भी वस्तु बिना कठिन संघर्ष के प्राप्त नहीं हो सकती। सम्भवतः उन्होंने इसी विचार से बाल गंगाधर के प्रति अपना झुकाव पेश किया हो। उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उन्होंने उग्रवादिता का ही उपयोग सही ठहराया। इसीलिए वे जन–मानस को अधिकाधिक मानसिक एवं शारीरिक दोनों रूपों से तैयार करके देश की स्वतंत्रता की ध्वनि को और अधिक प्रबल बनाना चाहते थे। निगम जी ने उनके विषय में लिखा है – **''उनका (प्रेमचन्द) का विचार था कि बिना सरकार से सख़्ती के साथ झगड़े कुछ भी प्राप्त किया जाना सम्भव नहीं है।''**

प्रेमचन्द जी का दिल व दिमाग़ देश की आज़ादी के प्रति छटपटाता रहता था। अतएव उन्होंने अपनी कहानियों, उपन्यासों तथा नाटकों में विदेशी अत्याचारों एवं अन्यायों के विरुद्ध ख़ूब–ख़ूब लिखा और इनका प्रसार किया। इसी से प्रेरित होकर उन्होंने सबसे पहले कहानी–संग्रह ''**सोज़–ए–वतन**'' के शीर्षक से शुरू किया जो ''**ज़माना**'' में सन् 1908 में प्रकाशित हुआ।

देश–भक्तों की कहानियों से परिपूर्ण यह प्रथम भाग था। इससे प्रेमचन्द जी की ख्याति काफ़ी बढ़ गयी। परिणामतः अब अंग्रेज़ सरकार उनसे नाराज़ हो गयी चूँकि प्रेमचन्द शिक्षा–विभाग से सम्बद्ध अध्यापन कार्य कर ही रहे थे और साथ ही साथ वे अपने लेखन कार्य भी करते रहे जिससे उनकी राजनीतिक तथा सामाजिक हैसियत और बढ़ती गयी। अब उन्होंने अपना एक अलग ही स्थान बना लिया था।

जून 1909 में प्रेमचन्द जी की पदोन्नति हो गयी तथा साथ ही साथ उनका ''**सब–डिप्टी इंस्पेक्टर आफ स्कूल**'' के पद पर नियुक्ति हुई और स्थानान्तरण महोबा हो गया। इसी दरमियान ज़िला मजिस्ट्रेट ने प्रेमचन्द जी के कहानियों के संग्रह ''सोज़–ए–वतन'' की सभी

कापियां ज़ब्त करने का आदेश जारी कर दिया। प्रेमचन्द जी को हिदायत भी दी गयी कि बिना अधिकारियों की अनुमति के अब वे कुछ नहीं लिख सकते हैं। लेखन प्रतिबन्ध सम्बन्धी हिदायतों का प्रभाव प्रेमचन्द पर पड़ना स्वाभाविक ही था। वे अब असामन्जस्य में पड़ गये। अतएव उन्होंने कुछ समय के लिए सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक सम्बन्धी विषयों को अपना लेखन का शीर्षक बनाया। अपने लेखन–कार्य में उन्होंने ग्रामीण जीवन से शहरी जीवन तक की स्थिति एवं दशा का वर्णन अत्यन्त रोचक एवं सजीव ढंग से पेश किया। ऐसा कहा जाता है कि ग्रामीण जीवन का चित्रण जो प्रेमचन्द जी ने अपनी कृतियों में दर्शाया उतना सजीव एवं सटीक चित्रण सम्भवतः आजतक कोई कहानीकार न पेश कर सका।

परन्तु शीघ्र ही प्रेमचन्द को एक सुखद अवसर प्राप्त हो गया। 18 अगस्त 1916 में प्रेमचन्द को गोरखपुर में ''**नार्मल–स्कूल**'' में एक सहायक अध्यापक की हैसियत से स्थानान्तरित कर दिया गया। यह कार्य उनके लिए अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुआ। अब उन्हें अपनी ''**कलमी–जंग**'' करने का एक और अच्छा अवसर प्राप्त हुआ। यहां उन्होंने कई कहानियां लिखीं जिनमें ''**नमक का दरोगा**'' नामक कहानी लिखी। इसमें उन्होंने सच्चाई एवं वास्तविक स्थिति की एक ऐसी जीती–जागती तस्वीर जनमानस के सामने पेश की जो अपने में एक मिसाल बनी। यह प्रेम जी की कलम की जादूगरी तथा उनके दिलो दिमाग की सच्ची फ़िक्र का ये नतीजा थी।

प्रेमचन्द जी की यह सूझ–बूझ तथा होशमन्दी ही कही जा सकती है कि वे समय समय पर अपने लेखन–कार्य में परिवर्तन कर विभिन्न विषयों को लेकर अपना लेखन का शीर्षक बनाते रहे। उन्होंने2 मई 1918 में एक नया उपन्यास ''**प्रेमाश्रम**'' लिखना शुरू किया और इसे 25 फरवरी 1920 में समाप्त कर दिया। प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में भारतीयों का अंग्रेज़ों के विरुद्ध तीव्र राष्ट्रीय संघर्ष में आह्वान को अपना आधार बनाया। यह उपन्यास बहुत प्रभावपूर्ण साबित हुआ। इसने लोगों में अपने राष्ट्र के प्रति जागरूकता का संचार किया। इसका प्रभाव गांधीजी के सत्याग्रह आन्दोलन पर बहुत व्यापक रूप से पड़ा। चूँकि उन दिनों **रोलट एक्ट**, ''**मार्शल–एक्ट**'' तथा ''**जलियान वाला बाग़ हत्याकाण्ड**'' आदि ऐसी घटनाओं से सारे भारतवर्ष में विप्लव एवं क्रोध का माहौल तैयार हो गया था। लेकिन इस उपन्यास से भारतीयों के मस्तिष्क में अंग्रेज़ों के विरुद्ध क्रोधाग्नि की ज्वाला को और अधिक भड़का दिया।

प्रेमचन्द जी ने अपनी राजनैतिक दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए 17 फरवरी 1923 में अपने मित्र निगम जी को एक पत्र में लिखा – ''**आप मुझसे पूछते हैं कि मैं (कांग्रेस और सोशलिस्ट) किस पार्टी का हूं। मैं किसी पार्टी का नहीं हूं। क्योंकि दोनों पार्टियां व्यवहारिक रूप से कुछ नहीं कर रही हैं। मैं उस पार्टी से सम्बद्ध हूं जो भविष्य में ग़रीब को राजनीतिक शिक्षा और उनके हित में कार्यक्रमों को अपनायें।**''

अब प्रेमचन्द जी ने अपने जीवन का अमूल्य समय अधिकाधिक रूप से देश की ही सेवा में अर्पित करने की ठान ली। जब गांधी जी के सत्याग्रह–आन्दोलन की गूँज भारत में जंगल की आग की तरह फैल रही थी, तब इसका प्रबल प्रभाव मुन्शी प्रेमचन्द जी पर भी पड़ा। 8 फरवरी सन् 1921 जब गांधी जी गोरखपुर से देश के तूफानी दौरे पर निकले। इस दौरे का प्रभाव

प्रेमचन्द जी पर व्यापक रूप से पड़ा जिसका परिणाम यह निकला कि उन्होंने 15 फरवरी 1921 में सरकारी नौकरी से ही इस्तीफ़ा दे दिया। कहा जाता है कि इस अन्तिम निर्णय में उनकी जीवन संगिनी शिवानी देवी की अहम भूमिका थी। उन्होंने प्रेमचन्द जी से कई बार ब्रिटिश सरकार की असहनीय नीतियों के विरुद्ध एक प्रबल आवाज़ उठाने के लिए सरकारी नौकरी छोड़ने को उन्हें उकसा चुकी थीं।

प्रेमचन्द जीका अपने देश तथा देश वासियों के लिए अपनी लगी लगायी रोज़ी–रोटी के विरुद्ध इतना गम्भीर क़दम उठाना उन्हीं जैसे ईश्वर पर आश्रित होने वाले निडर देश–प्रेमी का ही कार्य था। उन्हें 16 फरवरी को पद मुक्त का आदेश प्राप्त हो गया। उसी दिन उन्होंने अपना सरकारी मकान छोड़कर अपने एक मित्र के मकान में प्रवेश कर अंग्रेज़ों के प्रति विरोध को प्रदर्शित किया। **यद्यपि इस समय उन्हें आर्थिक समस्या से जूझना पड़ रहा था, परन्तु उस कलम के सिपाही ने बड़े धैर्य, साहस व आशा का ही परिचय दिया।** अन्ततोगत्वा वे गोरखपुर से बनारस अपने गांव वापस आ गये।

प्रेमचन्द जी कुछ समय तक अपने गांव लमाही में शान्ति से जीवन व्यतीत करते रहे। उन्होंने वहां रहकर भी अपना लेखन–कार्य जारी ही रखा। अब वे गांधी जी के भक्त बन गए। वे गांधी–विश्वास का प्रसार अथक प्रयास के साथ करते रहे। परन्तु घरेलू झगड़ों के कारण वे कानपुर आ गये। कानपुर में मारवाड़ी स्कूल में हेड मास्टर के रूप में कार्य करने लगे।

उस समय कानपुर ऐसा शहर था जहां अंग्रेज़ो के विरुद्ध पूर्व भूमिका बनी हुई थी। अब प्रेमचन्द जी को राष्ट्रीय राजनीति के चक्रव्यूह में और अधिक प्रशस्तता से घुसने का अवसर मिला। जिसके लिए वे पहले से ही आतुर थे। इससे उन्होंने हृदय रूप से काफ़ी प्रसन्नता का अनुभव किया। खेद यह कि इस कलम के सिपाही को विभिन्न परेशानियों ने पुनः घेर लिया। फलतः यह नौकरी उन्हें रास न आयी। विद्यालय का प्रबन्ध–तन्त्र उनके पीछे पड़ गया। उनके कार्यों में लगातार अड़ंगा लगाने लगा। अतः अन्त में विवश होकर 22 फरवरी 1922 को अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया और वह पुनः बनारस वापस आ गये।

बनारस आकर प्रेमचन्द ने ''**ज्ञान मण्डल**'' के ''**मर्यादा**'' तथा ''**आज**'' के लिए लेख लिखना शुरू कर दिया। फिर वे **काशी विद्यापीठ के इन्चार्ज** बना दिये गये। परन्तु यह सब उनको छोड़ना ही पड़ा। अब वे बनारस में स्वयं अपना प्रेस स्थापित करके देश तथा देशवासियों के हितार्थ एक उच्च स्तरीय कार्य करना चाहते थे। परन्तु वे ''**सरस्वती प्रेस**'' में काम करने लगे। वहाँ भी उनको सन्तोष न मिल सका और उसे भी छोड़ दिया। छोड़ने के कई वर्षों बाद उन्होंने अपने मित्र को पत्र लिखा **''यह प्रेस सभी प्रकार के कष्टों से भरा पड़ा है।... यह मेरे जीवन की सबसे बड़ी ग़लती हो चुकी है।''**

मुन्शी प्रेमचन्द जी ने अपने लेखन कार्य से देश की तत्कालिक राजनीति के उद्धार के लिए कलम उठाया। देश की स्वतंत्रता हेतु विभिन्न आन्दोलनों में स्वयं शामिल भी हुए। वहीं उन्हें देश की दो बड़ी क़ौमों–हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य भ्रातृ–भाव की रस्सी को प्रशस्त एवं शक्ति शाली बनाने का सफ़ल प्रयास भी किया। इसी दरमियान उन्होंने ''**संग्राम**'' तथा ''**करबला**'' में सामुदायिक सौहार्द का सन्देश प्रसारित किया। उन्होंने अपनी कृतियों के माध्यम

से लोगों में शान्ति एवं सह–अस्तित्व की भावना का सार प्रस्तुत किया।

इसके बाद प्रेमचन्द ने ''**रंगभूमि**'' नामक उपन्यास लिखा। इसमें प्रेमचन्द ने भारत की स्पष्ट और शक्तिशाली छवि को अंकित किया। इसके परिणम स्वरूप भारत में उन्हें काफ़ी प्रसिद्धि प्राप्त हुई। **उपन्यास पाठकों ने अपनी ओर से उन्हें ''उपन्यास सम्राट'' के ख़िताब से अलंकृत किया। तभी से वे उपन्यास सम्राट कहलाये।**

मुंशी प्रेमचन्द जी अपने लेखन कृतियों द्वारा देश तथा देशवासियों की सेवा में अविरल प्रयासरत रहे। उन्होंने एक और नया उपन्यास ''**कर्म–भूमि**'' जिसे उन्होंने **16 अप्रैल 1931 में लिखा जो अगस्त 1932 में प्रकाशित** हुआ। यह उपन्यास अत्यन्त उत्तेजनात्मक ढंग पर आधारित था। जिसके कारण भारतीय सभी जगह विदेशी शासन के विरुद्ध आन्दोलनात्मक कार्यवाही हेतु उद्वेलित हो उठे। इस उपन्यास से लोगों में इतनी अधिक उत्तेजना फैल गयी जिसे कोई भी न रोक सका। इस उत्तेजनात्मक तूफान ने समस्त भारत को विद्रोह में परिणत कर दिया। जबकि इससे पूर्व भारत में साइमन कमीशन असफल हो चुका था। असम्बलियों में बमों की घटनायें भी हो रही थीं।

मुंशी प्रेमचन्द अपने पवित्र उद्देश्य के प्रति जीवन के अन्तिम क्षण तक सदैव सजग एवं अडिग बने रहे। वह एक साहसी एवं धैर्यवान कलम के सिपाही थे। वह देश में होने वाली विभिन्न घटनाओं एवं सामाजिक बुराइयों के उद्धार के लिए एक ''सुरक्षा–बल'' की भांति सदैव तत्परता से जूझते रहे। वे अपने परिवारिक कलह तथा शोचनीय आर्थिक स्थिति से चिन्तित रहने के उपरान्त भी अपने लेखन कार्य से कभी विमुख नहीं हुए। परन्तु बीमारी ने उन्हें मज़बूत चंगुल में ऐसा कस लिया कि उससे उन्हें मुक्ति न मिल सकी। अन्ततोगत्वा **8 अक्टूबर 1936 में 56 वर्ष की आयु में ही इस अशान्त आत्मा ने देश की स्वतंत्रता से पूर्व ही शरीरान्त कर, देश के जन–साधारण से लेकर विविष्ट लोगों तक सभी को शोकग्रस्त कर दिया।**